भावतोऽर्थकर्ता निरूप्यते ज्ञानावरणादि-निश्चय-व्यवहारापायातिशयजाता-नन्तज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य-क्षायिक-सम्यक्त्व-दान-लाभ-भोगोपभोग-निश्चय-व्यवहार-प्राप्त्यतिशयभूत-नव-केवल-लब्धि-परिणत: (णाणावरणप्पहुदि अ णिच्छ्यववहारपायअतिसयए । संजादेण अणंतं णाणेणं सणसुहेणं।। विरिएण तहा खाइयसम्मतेणं पि दाणलाहेहिं। भोगोपभोगणिच्छयववहारेहिं च पुरिपुण्णो।। ति.प. ७१,७२.)। उत्तं च

कृष्णपक्षमें, प्रतिपदाके दिन प्रात:कालके समय आकाशमें अभिजित नक्षत्रके उदित रहने पर तीर्थ अर्थात धर्मतीर्थकी उत्पत्ति हुई ।। ५५,५६।।

श्रावणकृष्ण-प्रतिपदाके दिन रुद्रमूहूर्तमें सूर्यका शुभ उदय होने पर और अभिजित नक्षत्रके प्रथम योगमें जब युगकी आदि हुई तभी की उत्पत्ति समझना चाहिये ।।५७।।

यह काल-परिच्छेद हुआ ।

अब भावकी अपेक्षा अर्थकर्ताका निरूपण करते हैं।

ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंके निश्चय-व्यवहाररूप विनाश कारणोंकी विशेषतासे उत्पन्न हुए अनन्तज्ञान, दर्शन, सुख, और वीर्य तथा क्षायिक-सम्यक्त्व, दान, लाभ, भोग, और उपभोगकी निश्चय-व्यवहाररूप प्राप्तिके अतिशयसे प्राप्त हुई नौ केवल-लब्धियोंसे परिणत भगवान महावीरने भावश्रुतका उपदेश दिया। अर्थात निश्चय और व्यवहारसे अभेद-भेदरूप नौ लब्धयोंसे युक्त होकर भगवान महावीरने भावश्रुतका उपदेश दिया । कहा भी है --

दाणे लाभे भोगे परिभोगे वीरिंए य सम्मत्ते।

णव केवल-लद्वीओ दंसण-णांण चरित्ते य।।५८।। १(ब. प्रतौ गाथेयं नास्ति।)

खीणे दंसण-मोहे चरित्त-मोहे तहेव२(मु. चउक्क।) घाइ-तिए।

सम्मत्त-विरिय-णाणं` खइयाइं होंति केवलिणो३(खीणे दंसणमोहे चरित्तमोहे तहेव घाइतिए । सम्मत्तणाणविरिया खइया ते होंति केवलिणो । जयध. अ. पृ. ८.दंसणमोहे णट्ठे घादित्तिदए चरित्तमोहम्मि। सम्मत्तणाणदंसणवीरियचरियाइ होंति खइयाइं।। ति. प. १, ७३.)।।५९।।

उप्पण्णम्हि अणंते णट्ठम्मि य छादुमत्थिए णाणे।

णव-विह-पयत्थ-गब्भा दिव्वज्झुणी कहेइ सुत्तट्ठं ४(जादे अणंतणाणे णट्ठे छदुमट्ठिदम्मि णाणम्मि। णवविहपदत्थसारा दिव्वज्झुणी कहइ सुत्तत्थं।। अण्णेहिं अणंतेहिं गुणेहिं जुत्तो विसुद्धचारित्तो। भवभयभंजणदच्छो महावीरो अत्थकत्तारो ।। ति.प .१, ७४-७५.)।।६०।।

एंवविधो महावीरोऽर्थकर्ता । तेण महावीरेण केवलणाणिणा कहिदत्थो तम्हि चेव काले तत्थेव खेत्ते खयोवसम-जणिद-चउरमल-बुद्धि-संपण्णेण बम्हणेण गोदम-गोत्तेण सयलदुस्सुदि-पारएण जीवाजीव-विसय-संदेह५(महवीरभासियत्थो तस्सिं खेत्तम्मि तत्थकाले य। खायोवसमविवड्ढिदचउरमलमईहिं पुण्णेणं।। लोयालोयाण तहा जीवाजीवाण विविहविसएसु । संदेहणासणत्थं उवगदसिरिवीरचलणमूलेण।। विमले गोदमगोत्ते जादेणं इंदभूदिणामेणं। चउवेदपारगेणं सिस्सेण विसुद्धसीलेण।। ति. प. १, ७६-७८.)-विणासणट्ठमुवगय-वड्ढमाण-पाद-मूलेण इंदभूदिणावहारिदो६(मिथ्यादृष्टव्यवस्थायामिन्द्रभूतिः सकलवेदवेदाङ्गपारगः सन्नपि जीवास्तित्वविषये संदिग्ध एवासीत्।)। उत्तं च---

----

दान, लाभ, भोग, परिभोग, वीर्य, सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान और चारित्र ये नव केवल-लब्धियाँ हैं।।५८।।

दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयके क्षय हो जानेपर तथा शेष तीन घातिया कर्मोंके क्षय हो जानेपर केवलीजिनके सम्यक्त्व, वीर्य और ज्ञान ये क्षायिक भाव प्रगट होते हैं ।। ५९।।

क्षायोपशमिक ज्ञानके नष्ट हो जानेपर और अनन्तरूप केवलज्ञानके उत्पन्न हो जानेपर नौ प्रकारके पदार्थोंसे गर्भित दिव्यध्वनि सूत्रार्थका प्रतिपादन करती हैं। अर्थात् केवलज्ञान हो जानेपर भगवान्‌की दिव्यध्वनि खिरती है।।६०।।

इस प्रकार भगवान् महावीर अर्थ-कर्ता हैं। इस प्रकार केवलज्ञानसे विभूषित उन भगवान् महावीरके द्वारा कहे गये अर्थको, उसी कालमें और उसी क्षेत्रमें क्षयोपशमविशेषसे उत्पन्न हुए चार प्रकारके निर्मल ज्ञानसे युक्त, वर्णसे ब्राह्मण, गोतमगोत्री, संपूर्ण दुःश्रुतिमें पारंगत, और जीव-अजीवविषयक संदेहको दूर करनेके लिये श्री वर्द्धमानके पादमूलमें उपस्थित हुए ऐसे इन्द्रभूतिने अवधारण किया। कहा भी है--

----

गोत्तेण गोदमो१(गोतमा गौ: प्रकृष्टा स्यात् सा च सर्वज्ञभारती। तां वेत्सि तामधीष्टे च त्वमतो गौतमो मत:।। गोतमादागतो देव: स्वर्गाग्राद्गौतमो मत:। तेन प्रोक्तमधीयानस्त्वञ्चासीगौंतमश्रुति:।। इन्द्रेण प्राप्त-पूजर्द्धिरिन्द्रभूतिस्त्वमिष्यसे। साक्षात्सर्वज्ञपुत्रस्त्वमाप्तसंज्ञानकण्ठिक:।। आ पु २,५२-५४)विप्पो चाउव्वेय-सडंगवि।

णामेण इंदभूदि त्ति सीलवं बम्हणुत्तमो।।६१।।

पुणो तेणिंदभूदिणा भाव-सुद-पज्जय-परिणदेण बारहंगाणं चोद्दस-पुव्वाणं च गंथाणमेक्केण चेव मुहुत्तेण कमेण रयणा कदा२(भावसुदपज्जएहिं परिणदमइणा य बारसंगाणं। चोद्दसपुव्वाण तहा एक्कमुहुत्तेण विरचणा विहिदा। ति प १, ७९)। तदो भाव-सुदस्स अत्थ-पदाणं च तित्थयरो कत्ता। तित्थयरादो सुद-पज्जाएण गोदमो परिणदो त्ति दव्व-सुदस्स गोदमो कत्ता। तत्तो गंथ-रयणा जादेत्ति। तेण वि३(मु. तेण गोदमेण।) गोदमेण दुविहमवि सुदणाणं लोहज्जस्स संचारिदं । तेण वि जंबूसामिस्स संचारिदं। परिवाडिमस्सिदूण एदे तिण्णि वि सयल-सुद-धारया भणिया। अपरिवाडिए पुण सयल-सुद-पारगा संखेज्ज-सहस्सा।

गौतमगोत्री. विप्रवर्णी, चारों वेद और षडंगविद्याका पारगामी, शीलवान् और ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ऐसा वर्द्धमानस्वामीका प्रथम गणधर इन्द्रभूति इस नामसे प्रसिद्ध हुआ।।६१।।

अनन्तर भावश्रुतरूप पर्यायसे परिणत उस इन्द्रभूतिने बारह अंग और चौदह पूर्वरूप ग्रन्थोंकी एक ही मुहुर्तमें क्रमसे रचना की। अत: भावश्रुत और अर्थ-पदोंके कर्ता तीर्थकर हैं। तथा तीर्थंकरके निमित्तसे गौतम गणधर श्रुतपर्यायसे परिणत हुए, इसलिये द्रव्यश्रुतके कर्ता गौतम गणधर हैं। इसतरह गौतम गणधरसे ग्रन्थरचना हुई। उन गौतम गणधरनेभी दोनों प्रकारका श्रुतज्ञान लोहार्यको दिया। लोहार्यनेभी जम्बूस्वामीको दिया। परिपाटीक्रमसे ये तीनों ही सकलश्रुतके धारण करनेवाले कहे गये हैं। और यदि परिपाटी-क्रमकी अपेक्षा न की जाय तो उस समय संख्यात हजार सकलश्रुतकेधारी हुए।

प्रश्नानन्तरं समवसरणं समभ्येत्य प्रवृज्य च श्रीवर्धमानस्वामिनं पप्रच्छ किं जीवोऽस्ति नास्ति वा किंगुण: कियान् कीदृग् ?' तदा जीवोऽस्त्यनादिनिधन: शुभाशुभविभेदकर्मणां कर्ता। x x

इत्याद्यनेकभेदैस्तथा स जीवादिवस्तु सभ्दावम् । दिव्यध्वनिना स्फुटमिन्द्रभूतये सन्मतिरवोचत्। इन्द्र. श्रुता. ४५-६४. देवै: क्रियमाणां समवसरणलक्षणां महिमां दृष्ट्वाऽमर्षित: सन्निन्द्रभूतिर्भणति- भो भो ब्राह्मणवरा: ! मां मुक्त्वा किमेष नागरलोकस्तस्य कस्यचित्पादमूलं धावति ? ननु महत्कुतूहलं कथयतात्रनिबन्धनमिति महाप्रलयमेघ इव गर्जित्वा समवसरणं प्रविष्टो वादार्थम् । परं च तत्र श्रीवीरं दृष्ट्वा हतप्रभ इव सशङ्कित: सन् पुरत: स्थित:। तदा भगवता वीरेणाभाषित: ' किं मन्ने अत्थि जीवो उयाहु नत्थि त्ति संसओ तुज्झ। वेयपयाण य अत्थं ण याणसी तेसिमो अत्थो ' (आ. नि. १५०) ततश्च नि:संशय सन्नसौ प्रव्रजित:। वि. भा. २०१८-२०८३.

गोदमथेरो१(मु. गोदमदेवो।) लोहज्जाइरियो२(जयधवलायामिन्द्रनन्दिश्रुतावतारे च लोहार्यस्य स्थाने सुधर्माचार्यस्योल्लेखोऽस्ति । तद्यथा-तदो तेण गीअमगोत्तेणइंदभूदिणा अंतोमुहुत्तेणावहारियदुवालसंगत्थेण तेणेव कालेण कयदुवालसंगगंथरयणेण गुणेहि सगसमाणस्स सुहुमाइरियस्स गंथो वक्खाणिदो। जयध. अ. पृ. ११. प्रतिपादितं ततस्तच्छ्रुतं समस्तं महात्मना तेन। प्रथितात्मीयसधर्मणे सुधर्माभिधानाय ।। इन्द्र. श्रुता. ६७.) जंबूसामी य एदे तिण्णि वि सत्त-विह-लद्धि-संपण्णा सयल-सुय-सायर-पारया होऊण केवलणाणमुप्पाइय णिव्वुइं पत्ता३(वासट्ठि वरिसकालो अणुवट्टिय तिण्णि केवलिणो । ब्र श्रु ६७) । तदो विण्हू णंदिमित्तो अवराइदो गोवद्धणो भद्दबाहु त्ति एदे पुरिसोली-कमेण पंच४(एदेसिं पंचण्हं पि सुदकेवलीणं कालो वस्ससदं १००। जयध अ पृ ११) वि चोद्दस-पुव्व-हरा । तदो विसाहाइरियो पोट्ठिलो खत्तियो जयाइरियो णागाइरियो सिद्धत्थथेरो५(मु सिद्धत्थदेवो।) धिदिसेणो विजयाइरियो बुद्धिल्लो गंगदेवो धम्मसेणो त्ति एदे६(तेसिं कालो तिसीदिसदवस्साणि १८३ । जयध अ पृ ११) पुरिसोली-कमेण एक्कारस विं आइरिया एक्कारसण्हमंगाणं उप्पायपुव्वादिं-दसण्हं पुव्वाणं च पारया जादा, सेसुवरिम-चदुण्हं पुव्वाणमेग-देस-धरा य । तदो णक्खत्ताइरियो जयपालो पांडुसामी धुवसेणो७('द्रुमसेन:' इति पाठ: । इन्द्र. श्रुता ८१.) कंसाइरियो त्ति एदे पुरिसोलीकमेण पंच८(एदेसिं कालो वीसुत्तरविसदवासमेत्तो २२०। जयध अ पृ ११) वि आइरिया एक्कारसंग-धारया जादा, चोद्दसण्हं पुव्वाणमेग-देस-धरा य। तदो सुभद्दो जसभद्दो९('अभयभद्र:' इति पाठ:। इन्द्र. श्रुता ८३) जसबाहू१० (' जहबाहू ' इति पाठ:। जयध अ पृ ११ घ्जयबाहु:ङ इति पाठ: ।

इन्द. श्रुता ८३) लोहज्जो त्ति एदे चत्तारि११(एदेसिं x x कालोअट्ठारसुत्तरं वाससदं ११८ . जयध. अ पृ, ११) वि आइरिया आयारंग-धरा

गौतमस्थविर, लोहाचार्य और जम्बूस्वामी ये तीनों ही सात प्रकारकी ऋद्धियोंसे युक्त और सकल-श्रुतरूपी सागरके पारगामी होकर अन्तमें केवलज्ञानको उत्पन्न कर निर्वाणको प्राप्त हुए। इसके बाद विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन, और भद्रबाहु ये पांचों ही आचार्य परिपाटी-क्रमसे चौदह पूर्वके धारी हुए।

तदनन्तर विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जयाचार्य, नागाचार्य, सिध्दार्थस्थविर, धृतिसेन, विजयाचार्य, बुद्धिल्ल, गंगदेव और धर्मसेन ये ग्यारह ही महापुरुष परिपाटी-क्रमसे ग्यारह अंग और उत्पादपूर्व आदि दश पूर्वोंके धारक तथा शेष उपरिम चार पूर्वोंके एकदेशके धारक हुए।

इसके बाद नक्षत्राचार्य, जयपाल, पाण्डुस्वामी, ध्रुवसेन, कंसाचार्य ये पांचों ही आचार्य परिपाटी-क्रमसे संपूर्ण ग्यारह अंगोंके और चौदह पूर्वोंके एकदेशके धारक हुए। तदनन्तर सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहार्य ये चारों ही आचार्य संपूर्ण आचारांगके धारक और

सेसंग-पुव्वाणमेग-देस-धरा यसेसंग-पुव्वाणमेग-देस-धरा य१(मु.-धारया।)। तदो२(एदेसिं सव्वेसिं कालाणं समासो छसदवासाणि तेसीदिवाससमहियाणि ६८३ वड्ढमाणजिणिंदे णिव्वाणं गदे। जयध. अ. पृ. ११.) सव्वेसिमंग-पुव्वाणमेग-देसो आइरिय-परंपराए आगच्छमाणो धरसेणइरियं संपत्तो।

तेण वि सोरट्ठ-विसय-गिरिणयर-पट्टण-चंदगुहा-ठिएण३(देशे ततः सुराष्ट्रे गिरिनगरपुरान्तिकोर्जयन्तगिरौ। चंद्रगुहाविनिवासी महातपाः परममुनिमुख्यः।। अग्रायणीयपूर्वस्थितपंचमवस्तुगतचतुर्थमहाकर्मप्राभृतकज्ञः सूरिर्धरसेननामाभूत्।। इन्द्र. श्रुता. १०३,१०४.) अट्ठंग-महाणिमित्त-पारएण गंथ-वोच्छेदो होहिदि त्ति जाद-भएण पवयण-वच्छलेण दक्खिणावहाइरियाणं महिमाए मिलियाणं लेहो पेसिदो४(देशेन्द्रदेशनामनि वेणाकतटीपुरे महामहिमा-समुदितमुनीन् प्रति ब्रह्मचारिणा प्रापयल्लेखम् ।। इन्द्र. श्रुता. १०३, १०४.) । लेह-ट्ठिय-धरसेणाइरिय। लेह-ट्ठिय-धरसेणाइरिय५(मु.धरसेण।) -वयणमवधारिय तेहि वि आइरिएहि बे साहू गहण-धारण-समत्था धवलामल-बहु-विह-विणय-विहूसियंगा सील-माला-हरा गुरु-

पेसणासण-तित्ता देस-कुल-जाइ-सुद्धा सयल-कला-पारया तिक्खुत्ताबुच्छियाइरिया अंधविसय-वेण्णायडादो पेसिदा। तेसु आगच्छमाणेसु रयणीए

शेष अंग तथा पूर्वोके एकदेशके धारक हुए। इसके बाद सभी अंग और पूर्वोंका एकदेश आचार्यपरंपरासे आता हुआ धरसेन आचार्यको प्राप्त हुआ।

सौराष्ट्र (गुजरात-काठियावाड़) देशके गिरिनगर नामके नगरकी चन्द्रगुफामें रहनेवाले, अष्टांग महानिमित्तके पारगामी, प्रवचन-वत्सल और आगे अंग-श्रुतका विच्छेद हो जायगा इसप्रकार उत्पन्न हो गया है भय जिनको ऐसे उन धरसेनाचार्यने महामहिमा अर्थात् पंचवर्षीय साधु-सम्मेलनमें संमिलित हुए दक्षिणापथ के (दक्षिणदेशके निवासी) आचार्योंके पास एक लेख भेजा। लेखमें लिखे गये धरसेनाचार्यके वचनोंको भलीभांति समझकर उन आचार्योंने शास्त्रके अर्थको ग्रहण और धारण करनेमें समर्थ, नाना प्रकारकी उज्वल और निर्मल विनयसे विभूषित अंगवाले, शीलरू पी मालाके धारक,गुरुओं द्वारा प्रेषण (भेजने) रू पी भोजनसे तृप्त हुए, देश, कुल, और जातिसे शुद्ध, अर्थात् उत्तम देश, उत्तम कुल और उत्तम जातिमें उत्पन्न हुए, समस्त कलाओंमें पारंगत, और तीन बार पूछा है आचार्योंसे जिन्होंने, (अर्थात् आचार्योंसे तीन बार आज्ञा लेकर) ऐसे दो साधुओंको आन्ध्र-देशमें बहनेवाली वेणानदीकेतटसे भेजा।

मार्गमें उन दोनों साधुओंकेआते समय, जो कुन्दकेपुष्प, चन्द्रमा और शंखकेसमान

पच्छिमभाए१(मु. पच्छिमे भाए ।) कुंदेंदु-संखवण्णा सव्व-लक्खण-संपुण्णा अप्पणो कय-तिप्पदाहिणा पाएसु णिसुढिय२('भाराक्रान्ते नमेर्णिसुढः'-है. ८, ४, १५८.) -पदियंगा बे वसहा सुमिणंतरेण धरसेण-भडारएण दिट्ठा। एवंविह-सुमिणं दट्ठूण तुट्ठेण धरसेणाइरिएण ' जयउ सुय देवदा ' त्ति संलवियं३(आगमनदिने च तयो: पुरैव धरसेनसूरिरपि रात्रौ ˘ निजपादयो: पतन्तौ धवलवृषावैक्षत स्वप्ने ˘ तत्स्वप्नेंक्षणमात्राज्जयतु श्रीदेवतेति समुपलपन् ˘ उदतिष्ठदत: प्रात: समागतावैक्षत मुनी द्वौ ˘ इन्द. श्रुता. ११२, ११३.) तद्दिवसे चेय ते दो वि जणा संपत्ता धरसेणाइरियं । तदो धरसेण-भयवदो४(ईसरिय-रू व-सिरिं-जस-धम्म पयत्तामया भगाभिक्खा ˘ ते तेसिमसामण्णा संति जओ तेण भगवंते ˘ वि. भा. १०५३.) किदियम्मं काउण दोण्णि दिवसे बोलाविय तदिय-दिवसे विणएण धरसेण-भडारओ तेहिं विण्णत्तो 'अणेण कज्जेणम्हा दो वि जणा

तुम्हं पादमूलमुगवया ' त्ति। 'सुट्ठु भद्दं ' ति भणिऊण धरसेण-भडारएण दो वि आसासिदा। तदो चिंतिदं भयवदा-

सेलघण-भग्गघड-अहि-चालणि-महिसाऽवि-जाहय-सुएहिं

मट्टिय-मसय-समाणं वक्खाणइ जो सुदं मोहा५(सेलघण कुडग चालिणि परिपूणग हंसमहिसमेसे य मसग जलूग बिराली जाहग गो भेरि आभीरी बृ. क. सू. ३३४., आ. नि. १३९.) ६२

दढ-गारव-पडिबद्धो विसयामिस-विस-वसेण घुम्मंतो

सो भट्ठ-बोहि-लाहो भमइ चिरं भव-वणे मूढो ६३

सफेद वर्णवाले हैं, जो समस्त लक्षणोंसे परिपूर्ण हैं, जिन्होंने आचार्य (धरसेन) की तीन प्रदक्षिणा की हैं और जिनके अंग नम्रित होकर आचार्यके चरणोंमें पड़ गये है ऐसे दो बैलोंको धरसेन भट्टारकने रात्रिके पिछले भागमें स्वप्नमें देखा इस प्रकारके स्वप्नको देखकर संतुष्ट हुए धरसेनाचार्यने ' श्रुतदेवता जयवन्त हो ' ऐसा वाक्य उच्चारण किया

उसी दिन दक्षिणापथसे भेजे हुए वे दोनों साधु धरसेनाचार्यको प्राप्त हुए उसके बाद धरसेनाचार्यकी पादवन्दना आदि कृतिकर्म करके और दो दिन बिताकर तीसरे दिन उन दोनोंने धरसेनाचार्यसे निवेदन किया कि ' इस कार्यसे हम दोनों आपके पादमूलको प्राप्त हुए हैं।' उन दोनो साधुओंके इसप्रकार निवेदन करने पर ' अच्छा है, कल्याण हो ' इसप्रकार कहकर धरसेन भट्टारकने उन दोनों साधुओंको आश्वासन दिया इसकेबाद भगवान धरसेनने विचार किया कि-

शैलघन, भग्नघट, अहि (सर्प), चालनी, महिष, अवि (मेंढा), जाहक (जोंक), शुक, माटी और मशकके समान श्रोताओंको जो मोहसे श्रुतका व्याख्यान करता है, वह मूढ़ दृढ़ रू पसे ऋद्धि आदि तीनों प्रकारके गारवोंके आधीन होकर विषयोंकी लोलुपतारू पी विषके वशसे मूर्च्छित हो, बोधि अर्थात् रत्नत्रयकी प्राप्तिसे भ्रष्ट होकर भव-वनमें चिरकालतक परिभ्रमण करता है ६२, ६३

विशेषार्थ-- शैलनाम पाषाणका है और घन नाम मेघका है जिसप्रकार पाषाण, मेघके चिरकालतक वर्षा करनेपर भी आर्द्र या मृदु नहीं होता है, उसी प्रकार कुछ ऐसे भी श्रोता होते हैं,

जिन्हें गुरुजन चिरकालतक भी धर्मामृतके वर्षण या सिंचन द्वारा कोमलपरिणामी नहीं बना सकते हैं ऐसे श्रोताओंको शैलघन श्रोता कहा है ँ १ ँ भग्नघट फूटे घड़ेको कहते हैं ॅ जिस प्रकार फूटे घड़ेमें ऊपरसे भरा गया जल नीचेकी ओरसे निकल जाता है भीतर कुछ भी नहीं ठहरता, इसी प्रकार जो उपदेशको एक कानसे सूनकर दुसरे कानसे निकाल देते हैं उन्हें भग्नघट श्रोता कहा है ँ २ ँ अहि नाम सांपका है ॅ जिस प्रकार मिश्री मिश्रित-दुग्धके पान करनेपर भी सर्प विषका ही वमन करता है, उसी प्रकार जो सुन्दर, मधुर और हितकर उपदेशके सुनने पर भी विष वमन करते है अर्थात् प्रतिकूल आचरण करते हैं, उन्हें अहिसमान श्रोता समझना चाहिए ँ ३ ँ चालनी जैसे उत्तम आटेको नीचे गीरा देती हैं और भूसा या चोकरको अपने भीतर रख लेती है, इसी प्रकार जो उत्तम सारयुक्त उपदेशको तो बाहर निकाल देते हैं और निःसार तत्त्वको धारण करते हैं वे चालनीसमान श्रोता हैं ँ ४ ँ महिषा अर्थात् भैंसा जिस प्रकार जलाशयसे जल तो कम पीता है परंतु बारबार डुबकी लगाकर उसे गंदला कर देता है, उसी प्रकार जो श्रोता सभामें उपदेश तो अल्प ग्रहण करते हैं पर प्रसंग पाकर क्षोभ या उद्वेग उत्पन्न कर देते हैं वे महिषासमान श्रोता हैं ँ ५ ँ अवि नाम मेष (मेंढा) का हैं ॅ जैसे मेंढा पालनेवालेकोही मारता है, उसी प्रकार जो उपदेशदाताकी ही निन्दा करते हैं और समय आनेपर घात तक करने को उद्यत रहते हैं उन्हें अविके समान श्रोता समझना चाहिए ँ ६ ँ जाहक नाम सेहि आदि अनेक जीवोंका है पर प्रकृतमें जोंक अर्थ ग्रहण किया गया हैं ॅ जैसे जोंकको स्तनपर भी लगावें तो भी वह दूध-न पीकर खून ही पीती है, इसी प्रकार जो उत्तम आचार्य या गुरुके समीप रहकर भी उत्तम तत्त्वको तो ग्रहण नहीं करते, पर अधम तत्त्वको ही ग्रहण करते हैं वे जोंकके समान श्रोता हैं ँ ७ ँ शुक नाम तोतेका है ॅ तोतेको जो कुछ सिखाया जाता हैं वह सीख तो जाता है पर उसे यथार्थ अर्थ प्रतिभासित नहीं होता, उसी प्रकार उपदेश स्मरणकर लेनेपर भी जिनके हृदयमें भाव-भासना नहीं होती है वे शुकसमान श्रोता हैं ँ ८ ँ मट्टी जैसे जलके संयोग मिलने पर तो कोमल हो जाती है, पर जलके अभावमें पुनः कठोर हो जाती है, इसी प्रकार जो उपदेश मिलनेतक तो मृदु-परिणामी बने रहते हैं और बादमें पूर्ववत् ही कठोर-हृदय हो जाते हैं वे मट्टीके समान श्रोता हैं ँ ९ ँ मशक अर्थात् मच्छर पहले कानोंमे आकर गुनगुनाता है, चरणोंमें गिरता है किंतु अवसर पाते ही काट खाता हैं, उसी प्रकार जो श्रोता पहले तो गुरु या उपदेश-दाताकी प्रशंसा करेंगे, चरण-वन्दना भी करेंगे,

पर अवसर आते ही काटे बिना न रहेंगे उन्हें मशकके समान श्रोता समझना चाहिये ॰ १० ॰ उक्त सभी प्रकारके श्रोता अयोग्य हैं, उन्हें उपदेश देना व्यर्थ हैं I

किसी किसी शास्त्रमें उक्त नामोंमें तथा अर्थमें भेद भी देखनेमें आता है किंतु कुश्रोताका भाव यहां पर अभीष्ट हैं I

इदि वयणादो जहाछंदाईणं विज्जा-दाणं संसार-भय-वद्धणमिदि चिंतेऊण सुहसुमिण-दंसणेणेव अवगय-पुरिसंतरेण धरसेण-भयवदा पुणरवि ताणं परिक्खा काउमाढता ' सुपरिक्खा हियय-णिव्वुइकरेत्ति ' ॰ तदो ताणं तेण दो विज्जाओ दिण्णाओ१(सुपरीक्षा ह्रन्निर्वृतिकरीति सञ्चिन्त्य दत्तवान् सूरि: ॰ साधयितुं विद्ये द्वे हीनाधिकवर्णसंयुक्ते ॰ इन्द्र. श्रुता. ११५.) ॰ तत्थ एया अहियक्खरा, अवरा विहीणक्खरा ॰ एदाओ छट्ठोववासेण साहेहु त्ति ॰ तदो ते सिद्धविज्जा विज्जा-देवदाओ पेच्छंति, एया उद्दंतुरिया अवरेया काणिया ॰ एसो देवदाणं सहावो ण होदि त्ति चिंतेऊण मंत-व्वायरण-सत्थ-कुसलेहिं हीणाहियक्खराणं छुहणावणयण-विहाणं काऊण पढंतेहि दो वि देवदाओ सहाव-रूव-ट्ठियाओ दिट्ठाओ ॰ पुणो तेहि धरसेण-भयवंतस्स जहावित्तेण विणएण णिवेदिदे सुट्ठु तुट्ठेण धरसेण-भडारएण सोम्म२(मु.सोम ॰) -तिहि-णक्खत्त-वारे गंथो परद्धो ॰ पुणो कमेण वक्खाणंतेण तेण आसाढ३(तत्थ एया अहियक्खरा, अवरा विहीणक्खरा ॰ एदाओ छट्ठोववासेण साहेहु त्ति ॰ तदो ते सिद्धविज्जा विज्जा-देवदाओ पेच्छंति, एया उद्दंतुरिया अवरेया काणिया ॰ एसो देवदाणं सहावो ण होदि त्ति चिंतेऊण मंत-व्वायरण-सत्थ-कुसलेहिं हीणाहियक्खराणं छुहणावणयण-विहाणं काऊण पढंतेहि दो वि देवदाओ सहाव-रूव-ट्ठियाओ दिट्ठाओ ॰ पुणो तेहि धरसेण-भयवंतस्स जहावित्तेण विणएण णिवेदिदे सुट्ठु तुट्ठेण धरसेण-भडारएण सोम्म२(मु.सोम ॰) -तिहि-णक्खत्त-वारे गंथो परद्धो ॰ पुणो कमेण वक्खाणंतेण तेण आसाढ३(मु.वक्खाणंतेण आसाढ ॰) -मास-सुक्क-पक्ख-एक्कारसीए पुव्वण्हे गंथो समाणिदो ॰ विणएण गंथो समाणिदो त्ति तुट्ठेहि भूदेहि तत्थेयस्स महदी पूजा पुप्फ-बलि-संख-

----

इस वचनके अनुसार यथाछन्द अर्थात् स्वच्छन्दतापूर्वक आचरण करनेवाले श्रोताओंको विद्या देना संसार और भयका ही बढ़ानेवाला है, ऐसा विचार कर, शुभ स्वप्नके देखने मात्रसे ही यद्यपि धरसेन भट्टारकने उन आये हुए दोनों साधुओंकेअन्तर अर्थात् विशेषताको जान लिया था,

तो भी फिरसे उनकी परीक्षा लेनेका निश्चय किया, क्योंकि, उत्तम प्रकारसे ली गई परीक्षा हृदयमें संतोषको उत्पन्न करती है ं इसके बाद धरसेनाचार्यने उन दोनों साधुओंको दो विद्याएं दीं ं उनमेंसे एक अधिक अक्षरवाली थी और दूसरी हीन अक्षरवाली थी ं दोनोंको दो विद्याएं देकर कहा कि इनको षष्ठभक्त उपवास अर्थात् दो दिनके उपवाससे सिद्ध करो ं इसके बाद जब उनको विद्याएं सिद्ध हुईं, तो उन्होंने विद्याकी अधिष्ठात्री देवताओंको देखा कि एक देवीके दांत बाहर निकले हुए हैं और दूसरी कानी है ं ' विकृतांग होना देवताओंका स्वभाव नहीं होता है ' इस प्रकार उन दोनोंने विचारकर मन्त्र-संबन्धी व्याकरण-शास्त्रमें कुशल उन दोनोंने हीन अक्षरवाली विद्यामें अधिक मिलाकर और अधिक अक्षरवाली विद्यामेंसे अक्षर निकालकर मन्त्रको पढना अर्थात् फिरसे सिद्ध करना प्रारम्भ किया ं जिससे व दोनों विद्यादेवतांए अपने स्वभाव और अपने सुन्दर रू पमें स्थित दिखलाई पड़ीं ं तदनन्तर भगवान् धरसेनके समक्ष, योग्य विनय-सहित उन दोनोंके विद्या-सिद्धिसंबन्धी समस्त वृत्तान्तके निवेदन करनेपर 'बहुत अच्छा ' इस प्रकार संतुष्ट हुए धरसेन भट्टारकने शुभ तिथि, शुभनक्षत्र और शुभवारमें ग्रन्थका पढ़ाना प्रारम्भ किया ं इसतरह क्रमसे व्याख्यान करते हुए धरसेन भगवान्‌से उन दोनोंने आषाढ मासके शुक्लपक्षकी एकादशीके पूर्वाण्हकालमें ग्रन्थ समाप्त किया ं विनयपूर्वक ग्रन्थ समाप्त किया, इसलिए संतुष्ट हुए भूत जातिके व्यन्तर देवोंने उन दोनोंमेंसे एककी

तुर-रव-संकुला कदा ं तं दट्‌ठूण तस्स ' भूदबलि ' त्ति भडारएण णामं कयं ं अवरस्स वि भूदेहि पूजिदस्स अत्थ-वियत्थ-ट्‌ठिय-दंत-पंतिमोसारिय भूदेहि समीकय-दंतस्स ' पुप्फयंतो ' त्ति णामं कयं ं

पुणो ते१(मु. पुणो तद्दिवसे ं) तद्दिवसे२(घद्वितीयदिवसेङ इति पाठ: ं इन्द्र. श्रुता.१२९.) चेव पेसिदा संता 'गुरु-वयणमलंघणिज्जं ' इदि चिंतिऊ-णागदेहि अंकुलेसरे वरिसा-कालो कओ ं जोगं समाणीय जिणवालियं३(घस्वभागिनेयंङ इति विशेष: ं इन्द्र. श्रुता. १३४.) दट्‌ठूण पुप्फयंताइरियो वणवासि४(दट्‌ठूण पुप्फयंताइरियो वणवासि४(मु.वणवास ं) -विसयं गदो ं भूदबलि-भडारओ वि दमिल-विसयं५(मु.दमिलदेसं ं अ.प्दट्‌ठूण पुप्फयंताइरियो वणवासि४(मु.वणवास ं) -विसयं गदो ं भूदबलि-भडारओ वि दमिल-विसयं५(मु.दमिलदेसं ं अ.प्रतिमें देसं पाठ:) गदो । तदो पुप्फयंताइरिएण जिणवालिदस्य दिक्खं दाऊण विंसदि६(मु. तथा अ. प्रतिमें वीसदि ं) -

सुत्ताणि७(वाञ्छन् गुणजीवादिकविंशतिविधसूत्रसत्प्ररू पणया ँ युक्तं जीवस्थानाद्यधिकारं व्यरचयत्सम्यक् इन्द्र. श्रुता. १३५.) करिय पढाविय पुणो सो भूदबलि-भयवंतस्स पासं पेसिदो ँ भूदबलि-भयवदा जिणवालिद-पासे दिट्ठ-विंसदि-सुत्तेण अप्पाउओ त्ति अवगय-जिणवालिदेण महाकम्म-पयडि-पाहुडस्स वोच्छेदो होहदि त्ति समुप्पण्ण-बुद्धिणा पुणो दव्व-पमाणाणुगममादिं काऊण गंथ-रचणा कदा ँ तदो एयं खंड-सिद्धंतं पडुच्च भूदबलि-पुप्फयंताइरिया वि कत्तारो उच्चंति ँ

पुष्प, बलि तथा शंख और तूर्य जातिके वाद्यविशेषके नादसे व्याप्त बडी भारी पूजा की ँ उसे देखकर धरसेन भट्टारकने उनका ' भूतबलि ' यह नाम रक्खा ँ तथा जिनकी भूतोंने पूजा की है, और अस्त-व्यस्त दन्तपंक्तिको दूर करके भूतोंने जिनके दांत समान कर दिये हैं ऐसे दूसरेका भी धरसेन भट्टारकने ' पुष्पदन्त ' नाम रक्खा ँ

तदनन्तर उसी दिन वहांसे भेजे गये उन दोनोंने ' गुरुके वचन अर्थात् गुरुकी आज्ञा अलंघनीय होती है' ऐसा विचार कर आते हुए अंकलेश्वर (गुजरात) में वर्षाकाल बिताया ँ वर्षायोगको समाप्त कर और जिनपालितको देखकर (उसके साथ) पुष्पदन्त आचार्य तो वनवासि देशको चले गये और भूतबलि भट्टारक तमिल देशको चले गये ँ तदनन्तर पुष्पदन्त आचार्यने जिनपालितको दीक्षा देकर, वीस प्ररू पणा गर्भित सत्प्ररू पणाके सूत्र बनाकर और जिनपालितको पढ़ाकर अनन्तर उन्हें भूतबलि आचार्यके पास भेजा ँ तदनन्तर जिन्होंने जिनपालितके पास वीस प्ररू पणान्तर्गत सत्प्ररू पणाके सूत्र देखे हैं और पुष्पदन्त आचार्य अल्पायु हैं ँ इसप्रकार जिन्होंने जिनपालितसे जान लिया हैं, अतएव महाकर्मप्रकृतिप्राभृतका विच्छेद हो जायगा इसप्रकार उत्पन्न हुई है बुद्धि जिनको ऐसे भगवान् भूतबलिने द्रव्यप्रमाणा-नुगमको आदि लेकर ग्रन्थ-रचना की ँ इसलिये इस खण्डसिद्धान्तकी अपेक्षा भूतबलि और पुष्पदन्त आचार्य भी श्रुतके कर्ता कहे जाते हैं ँ

तदो मूल-तंत-कत्ता वड्ढमाण-भडारओ, अणुतंत-कत्ता गोदम-सामी, उवतंतकत्तारा भूदबलि-पुप्फयंतादयो वीय-राय-दोस-मोहा मुणिवरा ँ किमर्थं कर्ता प्ररू प्यते ? शास्त्रस्य प्रामाण्यप्रदर्शनार्थम्१(इसमूलतंतकत्ता सिरिवीरो इंदभूदि विप्पवरे ँ उवतंते कत्तारो अणुतंते सेस

आइरिया ँ णिण्णट्ठरायदोसा महेसिणो दिव्वसुत्तकत्तारो ॅ किं कारणं पभणिदा कहिदुं सुत्तस्स पामण्णं ँ ति. प. १, ८०,-८१.) ' वक्तृप्रामाण्याद् वचनप्रामाण्यम् ' इति न्यायात् ॅ

संपहि जीवट्ठाणस्स२(पुष्पदन्तभूतबलिभ्यां प्रणीतस्यागमस्य नाम 'षट्खण्डागम:' तस्येमे षट् खण्डा:-१ जीवस्थानं २ खुद्दाबन्ध: ३ बन्धस्वामित्वविचय: ४ वेदनाखण्ड: ५ वर्गणाखण्ड: ६ महाबन्धश्चेति ॅ एषां षण्णां खण्डानां मध्ये प्रथमतस्तावज्जीवस्थाननामकप्रथमखण्डस्यावतारो निरू प्यते ॅ) अवयारो उच्चदे ॅ तं जहा- सो वि चउव्विहो उवक्कमो णिक्खेवो णयो अणुगमो चेदि ॅ तत्थ उवक्कमं भणिस्सामो ॅ उपक्रम इत्यर्थमात्मन: उप समीपं क्राम्यति करोतीत्युपक्रम:३(प्रकृतस्यार्थतत्त्वस्य श्रोतृबुद्धौ समर्पणम् ॅ उपक्रमोऽसौ विज्ञेयस्तथोपोद्धात इत्यपि ँ आ. पु. २. १०३. सत्थस्सोवक्कमणं उवक्कमो तेण तम्मि व तओ वा ॅ सत्थसमीवीकरणं आणयणं नासदेसम्मि ँ वि. भा. ९१४.) ॅ सो वि उवक्कमो पंचविहो-आणुपुव्वी णामं पमाणं वत्तव्वदा अत्थाहियारो चेदि ॅ उत्तं च---

तिविहा य आणुपुव्वी दसहा णामं च छव्विहं माणं ॅ

वत्तव्वदा य तिविहा तिविहो अत्थाहियारो वि ँ ६४ ँ इदि ॅ

इसतरह मूलग्रन्थकर्ता वर्द्धमान भट्टारक हैं, अनुग्रन्थकर्ता गौतमस्वामी हैं और उपग्रन्थकर्ता राग, द्वेष और मोहसे रहित भूतबलि, पुष्पदन्त इत्यादि अनेक आचार्य हैं ॅ

शंका-- यंहा पर कर्ताका प्ररू पण किसलिये किया गया है ?

समाधान-- शास्त्रकी प्रमाणताके दिखानेके लिये यहां पर कर्ताका प्ररू पण किया गया हैं, क्योंकि, 'वक्ताकी प्रमाणतासे ही वचनोंमें प्रमाणता आती है ' ऐसा न्याय है ॅ

अब जीवस्थानके अवतारका प्रतिपादन करते हैं ॅ अर्थात् पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्यने जीवस्थान, खुद्दाबन्ध, बन्धस्वामित्व, वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड और महाबन्ध नामक जिस षट्खण्डागमकी रचना की ॅ उनमेंसे, प्रकृतमें यहां जीवस्थान नामके प्रथम खण्डकी उत्पत्तिका क्रम कहते हैं ॅ वह इसप्रकार है--

वह अवतार चार प्रकारका है- उपक्रम, निक्षेप, नय और अनुगम ॅ उन चारोंमें पहले उपक्रमका निरू पण करते हैं, जो अर्थको अपने समीप करता है उसे उपक्रम कहते हैं ॅ उस उपक्रमके पांच भेद हैं- आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता, और अर्थाधिकार ॅ कहा भी है -

आनुपूर्वी तीन प्रकारकी है, नामके दश भेद हैं, प्रमाणके छह भेद हैं, वक्तव्यताके तीन भेद हैं और अर्थाधिकारकेभी तीन भेद हैं॰ ६४॰

पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी जत्थतत्थाणुपुव्वी चेदि तिविहा आणुपुव्वी ॰ जं मूलादो परिवाडीए उच्चदे सा पुव्वाणुपुव्वी१(जं. जेंण कमेण सुत्तकारेहि ठइदमुप्पण्णं वा तस्स तेण कमेण गणणा पुव्वाणुपुव्वी णाम॰ जयध. अ. पृ. ३.)। तिस्से उदाहरणं- 'उसहमजियं च वंदे२(उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च॰ पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे॰ सुविहिं च पुप्फदंतं सीयलसेयं च वासुपुज्जं च॰ विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि ।। कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च मुणिसुव्वयं च । णमिं वंदामि अरिट्ठं णेंमिं तह पासवड्माणं च॰ एवमए अभिथुहिया विहुयरयमला पहीणजरमरणा॰ चउवीसं वि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु॰ द. भ. पृ. ४.) ' इच्चेवमादि॰ जं उवरीदो हेट्ठा परिवाडीए उच्चदि सा पच्छाणुपुव्वी३(तस्स विलोमेण गणणा पच्छाणुपुव्वी॰ जयध. अ. पृ. ३.)॰ तिस्से उदाहरणं --

एस करेमि य पणमं जिणवर-वसहस्स वड्ढमाणस्स।

सेसाणं च जिणाणं सिव-सुह-कंखा विलोमेण४(एस करेमि पणामं जिणवरवसहस्स वड्ढमाणं च॰ सेसाणं च जिणाणं सगणगणधराणं च सव्वेसिं॰ मूलाचा. १०५.)|| ६५ || इदि

जमणुलोम-विलोमेहि विणा जहा तहा उच्चदि सा जत्थतत्थाणुपुव्वी५(जत्थ वा तत्थ वा अप्पणो इच्छिदमादिं कादूण गणणा जत्थतत्थाणुपुव्वी॰ जयध. अ. पृ. ३.) ।

तिस्से उदाहरणं--

गय-गवल-सजल-जलहर-परहुव-सिहि-गलय-भमर-संकासो॰

हरिउल-वंस-पईवो सिव-माउव-वच्छओ जयऊ॰ ६६॰ इच्चेवमादि॰

पूर्वानुपूर्वी, पश्चादानुपूर्वी और यथातथानुपूर्वी इसतरह आनुपूर्वीके तीन भेद हैं। जो वस्तुका विवेचन मूलसे परिपाटीद्वारा किया जाता है उसे पूर्वानुपूर्वी कहते हैं। उसका उदाहरण इसप्रकार है- ' ऋषभनाथकी वन्दना करता हूं, अजितनाथकी वन्दना करता हूं ' इत्यादी क्रमसे ऋषभनाथको आदि लेकर महावीरस्वामी पर्यन्त क्रमवार वन्दना करना सो वन्दनासंबन्धी

पूर्वानुपूर्वी उपक्रम है ् जो वस्तुका विवेचन ऊपरसे अर्थात् अन्तसे लेकर आदितक परिपाटी-क्रमसे (प्रतिलोम-पद्धतिसे) किया जाता है उसे पश्चादानुपूर्वी उपक्रम कहते हैं ् जैसे--

मोक्ष-सुखकी अभिलाषासे यह मैं जिनवरोंमें श्रेष्ठ ऐसे वर्द्धमानस्वामीको नमस्कार करता हूं ् और विलोमक्रमसे अर्थात् वर्द्धमानके बाद पार्श्वनाथक ो, पार्श्वनाथके बाद नेमिनाथको इत्यादि क्रमसे शेष जिनेन्द्रोंको भी नमस्कार करता हूं ् ६५ ्

जो कथन अनुलोम और प्रतिलोम क्रमसे विना जहां कहींसे भी किया जाता है उसे यथातथानुपूर्वी कहते हैं ् जैसे---

हाथी, अरण्यभैंसा, जलपरिपूर्ण और सघन मेघ, कोयल, मयूरका कण्ठ और भ्रमरके

इंद पुण जीवट्ठाणं खंड-सिद्धंतं पडुच्च पुव्वाणुपुव्वीए ट्ठिदं छण्हं खंडाणं पढम-खंडं जीवट्ठाणमिदि ् वेदणा-कसिण-पाहुड-मज्झादो अणुलोम-विलोम-कमेहि विणा जीवट्ठाणस्स संतादि-अहियारा अहिणिग्गया त्ति जीवट्ठाणं जत्थतत्थाणुपुव्वीए वि संठिदं ् जीवट्ठाणे ण पच्छाणुपुव्वी संभवइ ्

णामस्स दस१(से किं दसनामे पण्णत्ते ? तं जहा, गोण्णे नोगोण्णे आयाणपएणं पडिवक्खपएणं पहाणयाए अणाइअसिद्धतेणं नामेणं अवयवेणं संजोगेणं पमाणेणं ् अनु. १, १२७.) ट्ठाणाणि भवंति ् तं जहा, गोण्णपदे णोगोण्णपदे आदाणपदे पडिवक्खपदे अणादियसिद्धंतपदे पाधण्णपदे णामपदे अवयवपदे संजोगपदे चेदि ्

गुणानां भावो गौण्यम् ् तद् गौण्यं पदं स्थानमाश्रयो येषां नाम्नां तानि गौण्यपदानि२(से किं तं गोण्णे ? गोण्णे खमइ त्ति खमणो, तपइ त्ति तपणो, जलइ त्ति जलणो, पवइ त्ति पवणो ् से त्तं गोणे ् अनु. १, १२८.) ् यथा, आदित्यस्य तपनो भास्कर इत्यादीनि नामानि ् नोगौण्यपदं३(नो गोणे अकुंतो संकुतो अमुग्गो समुग्गो अलालं पलालं अकुलिया सकुलिया अमुद्दो समुद्दो नोपलं असइ त्ति पलासं, अमाति बाहए माइबाहए, अबीय वावए बीयावावए, नो इंदगोवइए त्ति इंदगोवे से त्तं नो गोणे ् अनु. १, १२८.) नाम गुणनिरपेक्षमनन्वर्थमिति यावत् ् तद्यथा, चन्द्रस्वामी सूर्यस्वामी इन्द्रगोप

समान वर्णवाले, हरिवंशके प्रदीप और शिवादेवी माताके लाल ऐसे नेमिनाथ भगवान् जयवन्त हों ६६ इत्यादि यथातथानुपूर्वीका उदाहरण समझना चाहिये

यह जीवस्थान नामक शास्त्र खण्डसिद्धान्तकी अपेक्षा पूर्वानुपूर्वी क्रमसे लिखा गया है, क्योंकि, षट्खण्डागममें जीवस्थान प्रथम खण्ड है वेदनाकषायप्राभृतके मध्यसे अनुलोम और विलोमक्रमके विना जीवस्थानके सत्, संख्या आदि अधिकार निकले हैं, इसलिये जीवस्थान यथातथानुपूर्वीमें भी गर्भित है किंतु इस जीवस्थान खण्डमें केवल पश्चादानुपूर्वी संभव नहीं है

नाम-उपक्रमके दश भेद हैं वे इसप्रकार हैं- गौण्यपद, नोगौण्यपद, आदानपद, प्रतिपक्षपद, अनादिसिद्धान्तपद, प्राधान्यपद, नामपद, प्रमाणपद, अवयवपद और संयोगपद
गुणोंकेभावको गौण्य कहते हैं जो पदार्थ गुणोंकी मुख्यतासे व्यवहृत होते हैं वे गौण्यपदार्थ हैं वे गौण्य पदार्थ पद अर्थात् स्थान या आश्रय जिन नामोंके होते हैं उन्हें गौण्यपदनाम कहते हैं अर्थात् जिस संज्ञाके व्यवहारमें अपने विशेष गुणका आश्रय लिया जाता है उसे गौण्यपदनाम कहते हैं जैसे, सूर्यकी तपन और भास् गुणकी अपेक्षा तपन और भास्कर इत्यादि संज्ञाऐं हैं जिन संज्ञाओंमें गुणोंकी अपेक्षा न हो, अर्थात् जो असार्थक नाम हैं उन्हें नोगौण्यपदनाम कहते हैं जैसे, चन्द्रस्वामी, सूर्यस्वामी, इन्दगोप इत्यादि नाम

इत्यादीनि नामानि आदानपदं१(से किं तं आयाणपदेणं ? धम्मो मंगलं, चूलिया चाउरंगिज्जं असंखयं आवंती तत्थिज्जं अद्दइज्जं जण्णइज्जं पुरिसइज्जं एल्लइज्जं वीरयं धम्मो मग्गो समोसरणं गंत्थो जं महियं से त्तं आयाणपएणं, । अनु. १, १२८.) नाम आत्तद्रव्यनिबन्धनम् । नैतद्गुणनाम्नोऽन्तर्भवति, तत्रादानादेयत्वविवक्षाभावात्। भावे वा न तद्गुणाश्रितम्, आदानपदनाम्नोऽन्तर्भावात । पूर्णकलश इत्येतदादानपदम् नादानपदम् तद्यथा- घटस्य कलश इति संज्ञा नात्तद्रव्यादिमाश्रिता, तस्यास्तथाविधविवक्षामन्तरेण प्रवृत्तायाः समुपलम्भात् न पूर्णशब्दोऽपि, तस्य पर्याप्तवाचनकत्वेन गुणनाम्नोऽन्तर्भावात् नोभयसमासोऽपि, तस्य भावसंयोगेऽन्तर्भावादिति ? न, जलादिद्रव्याधारत्वविवक्षायां पूर्णकलशशब्दस्यादान-

----

विशेषार्थ-- जिन मनुष्योंके चन्द्रस्वामी आदि नाम रक्खे जाते हैं उनमें चन्द्र आदिका न तो स्वामीपना पाया जाता है और न इन्द्रकेवे रक्षक ही होते हैं केवल ये नाम रूढ़िसे रक्खे जाते हैं इनमें गुणादि की कुछ भी प्रधानता नहीं पायी जाती है, इसलिये इन्हें नोगौण्यपदनाम कहते हैं

ग्रहण किये गये द्रव्यके निमित्तसे जो नाम व्यवहारमें आते हैं, अर्थात् जिनमें द्रव्यके निमित्तकी अपेक्षा होती है उन्हें आदानपदनाम कहते हैं

विशेषार्थ-- आदानपदनामोंमें, संयोगको प्राप्त हुए द्रव्यके निमित्तसे उत्पन्न हुई अवस्थाविशेषकी वाचक संज्ञाएं ली जाती हैं अर्थात् आदान-आदेय भावकी मुख्यतासे जो नाम प्रचलित होते हैं उन्हें आदानपदनाम कहते हैं

इस आदानपदनामका गुणनाममें अन्तर्भाव नहीं हो सकता है, क्योंकि, गुणनामोंमें आदान-आदेय भावकी विवक्षा नहीं रहती है यदि गुणनामोंमें भी आदान-आदेय भावकी विवक्षा मान ली जाय तो गौण्यपदनाम गुणाश्रित नहीं रह सकते हैं, क्योंकि, आदान-आदेय भावकी मुख्यतासे उनका आदानपदनामोमें अन्तर्भाव हो जायगा

' पूर्णकलश ' इस पदको आदानपदनाम समझना चाहिये ।

शंका-- ' पूर्णकलश ' यह आदानपदनाम नहीं हो सकता है इसका खुलासा इसप्रकार है- घटकी 'कलश' यह संज्ञा ग्रहण किए गये किसी द्रव्यादिकेआश्रयसे नहीं है, क्योंकि ' कलश ' इस संज्ञाकी द्रव्यादिकके निमित्तकी विवक्षाके विना ही प्रवृत्ति देखी जाती है इसी तरह ' पूर्ण ' यह शब्द भी आदानपदनाम नहीं हो सकता हैं, क्योंकि, ' पूर्ण ' यह शब्द पर्याप्तका वाचक होनेसे उसका गौण्यपदनाममें अन्तर्भाव हो जाता है पूर्ण और कलश इन दोनों पदोंका समास भी आदानपदनाम नहीं हो सकता है, क्योंकि, उसका भावसंयोगमें अन्तर्भाव हो जाता है ?

समाधान-- ऐसी शंका करना उचित नहीं है, क्योंकि, जलादि द्रव्यके आधारपनेकी विवक्षामें 'पूर्णकलश' इस शब्दको आदानपदनाम माना गया है

पदत्वाभ्युपगमात् एवमविधवेत्यपि चालयित्वा व्यवस्थापनीयम् अक्लिष्टानि कानि पुनरादानपदनामानि ? वधूरन्तर्वत्नीत्यादीनि, आत्तभर्तृधृतापत्यनिबन्धत्वात् प्रतिपक्षपदानि१(से किं तं पडिवक्खपएणं ? पडिवक्खपदेणं नवेसु गामागारणगरखेडकव्वडमंडवदोणमुहपट्टणासमसंवाहसंनिवेसेसु संनिविसमाणेसु असिवा सिवा,

अग्गी सीअलो, विसं महुरं, कल्लालघरेसु अंविलं साउअं, जे रत्तए से अलत्तय, जे लाउए से अलाउए, जे सुंभए से कुसुंभए, आलवंते विवलीअभासए, से त्तं पडिवक्खपएणं। अनु. १, १२८.) कुमारी बन्ध्येत्येवमादीनि, आदानपदप्रतिपक्षनिबन्धनत्वात् । अनादिसिद्धान्तपदानि धर्मास्तिरधर्मास्तिरित्येवमादीनि । अपौरुषेयत्वतोऽनादिः सिद्धान्तः, स पदं स्थानं यस्य तदनादिसिद्धान्तपदम्२(अनादियसिद्धंतेणं, धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए पुग्गलत्थिकाए अद्धासमए से त्तं अनादियसिद्धंतेणं । अनु. १, १२८.) । प्राधान्यपदानि३(पाहण्णयाए असोगवणे सत्तवणवणे चंपगवणे चूअवणे नागवणे पुन्नागवणे उच्छुवणे दक्खवणे सालिवणे से तं पाहण्णयाए। अनु. १, १२८.) आम्रवनं निम्बवनमित्यादीनि, वनान्तः सत्स्वप्यन्येष्वविवक्षितवृक्षेषु विवक्षाकृतप्राधान्यचूतपिचुमन्द-

----

विशेषार्थ-- जलादि द्रव्य आदान है और कलश आदेश है। इसलिये ' पूर्णकलश ' इस शब्दका आदानपदनाममें अन्तर्भाव होता हैं। यह बात गौण्यपदनाममें नहीं हैं, इसलिये उसमें उसका अन्तर्भाव नहीं होसकता है यदि गौण्यपदमें इसप्रकारकी विवक्षा की जायगी तो वह गौण्यपद न कहलाकर आदानपदकी कोटिमें आ जायगा।

इसीप्रकार ' अविधवा ' इस पदका भी विचार कर आदानपदनाममें अन्तर्भाव कर लेना चाहिये।

शंका-- अक्लिष्ट अर्थात् सरल आदानपदनाम कौनसे हैं ?

समाधान-- वधू और अन्तर्वत्नी इत्यादी सरल आदानपदनाम समझना चाहिये, क्योंकि, स्वीकृत पतिकी अपेक्षा वधू और धारण किये गये गर्भस्थ पुत्रकी अपेक्षा ‘ अन्तर्वत्नी ’ संज्ञा प्रचलित है।

कुमारी, वन्ध्या इत्यादिक प्रतिपक्षपदनाम हैं, क्योंकि, आदानपदोंमें ग्रहण किये गये दूसरे द्रव्यकी निमित्तता कारण पडती है और यहां पर अन्य द्रव्यका अभाव कारण पड़ता है। इसलिये आदानपदनामोंके प्रतिपक्ष-कारणक होनेसे कुमारी या वन्ध्या इत्यादि पद प्रतिपक्ष-पदनाम जानना चाहिये।

अनादिकालसे प्रवाहरूपसे चले आये सिद्धान्तवाचक पदोंको अनादिसिद्धान्तपदनाम कहते हैं ॱ जैसे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय इत्यादि ॱ अपौरुषेय होनेसे सिद्धान्त अनादि है ॱ वह सिद्धान्त जिस नामरू प पदका आश्रय हो उसे अनादिसिद्धान्तपद कहते हैं ॱ

बहुतसे पदार्थोंके होने पर भी किसी एक पदार्थकी बहुलता आदि द्वारा प्राप्त हुई प्रधानतासे जो नाम बोले जाते है उन्हें प्राधान्यपदनाम कहते हैं ॱ जैसे आम्रवन निम्बवन

निबंन्धनत्वात् ॱ नामपदं१(नामेणं पिउपिआमहस्स नामेणं उन्नामिज्जइ से त्तं णामेणं । अनु. १, १२८.) नाम गौडोऽन्ध्रो द्रमिल इति, गौडान्ध्रद्रमिलभाषानामधामत्वात् ॱ प्रमाणपदानि२(पमाणेणं चउव्विहे पण्णत्ते । तं जहा, नामपमाणे ठवणप्पमाणे दव्वपमाणे भावपमाणे । अनु. १, १३३.) शतं सहस्त्रं द्रोण: खारी पलं तुला कर्षादीनि, प्रमाणनाम्नां प्रमेयेषूपलम्भात् ॱ

अवयवपदानि३(अवयवेणं, सिंगी सिही विसाणी दाढी पक्खी खरी नही वाली । दुपय चउप्पय बहुपय लंगूली केसरी कउही परियरं-बंधेण भडं जाणिज्जा महिलिअं निवसणेणं सित्थेण दोणवायं कविं च एक्काए गाहाए । से त्तं अवयवेणं । अनु. १, १२८.) यथा ॱ सोऽवयवो द्विविध:, उपचितोऽपचित इति ॱ तत्रोपचितावयवनिबन्धनानि यथा, गलगण्ड: शिलीपद: लम्बकर्ण इत्यादीनि नामानि ॱ अवयवापचयनिबन्धनानि यथा छिन्नकर्ण: छिन्ननासिक इत्यादीनि नामानि । संयोगपदानि४(से किं तं संजोएणं ? संजोगे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा, दव्वसंजोगे, खेत्तसंजोगे, कालसंजोगे, भावसंजोगे । से किं तं दव्वसंजोगे ? दव्वसंजोगे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा, सचित्ते अचित्ते, मीसए । से किं त्तं सचित्ते ? सचित्ते गोहिं गोमिए, महिसीहिं महिसए, उरणीहिं उरणीए, उट्टीहिं उट्टीवाले, से तं सचित्ते । से) यथा ॱ स संयोगश्चतुर्विधो द्रव्यक्षेत्रकालभावसंयोगभेदात् ॱ द्रव्यसंयोगपदानि यथा- इभ्य: गौथ: दण्डी छत्री गर्भिणी इत्यादीनि, द्रव्यसंयोगनिबन्धनत्वात् तेषां ॱ

इत्यादि ॱ वनमें अन्य अविवक्षित वृक्षोंके रहने पर भी विवक्षासे प्रधानताको प्राप्त आम और नीमके वृक्षोंके कारण आम्रवन और निम्बवन आदि नाम व्यवहारमें आते हैं ।

गौड, आन्ध्र, द्रमिल इत्यादि नामपद नाम हैं । ये गौड आदि नाम गौडी, आन्ध्री और द्रमिल भाषाओंके नाम केआधारभूत हैं ।

गणना अथवा मापकी अपेक्षासे जो संज्ञाऐं प्रचलित हैं उन्हें प्रमाणपदनाम कहते हैं । जैसे, सौ, हजार, द्रोण, खारी, पल, तुला, कर्ष इत्यादि । ये सब प्रमाणनाम प्रमेयोंमें पाये जाते हैं, अर्थात् इन नामोंकेद्वारा तत्प्रमाण वस्तुका बोध होता है ।

अब अवयवपदनाम कहते हैं । अवयव दो प्रकारके होते हैं- उपचितावयव और अपचितावयव । रोगादिके निमित्त मिलने पर किसी अवयवके बढ जानेसे जो नाम बोले जाते हैं उन्हें उपचितावयवपदनाम कहते हैं । जैसे, गलगंड, शिलीपद, लम्बकर्ण इत्यादि । जो नाम अवयवोंके अपचय अर्थात् उनके छिन्न हो जानेके निमित्तसे व्यवहारमें आते हैं उन्हें अपचितावयवपदनाम कहते हैं । जैसे, छिन्नकर्ण, छिन्ननासिक इत्यादि नाम ।

अब संयोगपदनामका कथन करते हैं । द्रव्यसंयोग, क्षेत्रसंयोग, कालसंयोग और भावसंयोग के भेदसे संयोग चार प्रकारका है । इभ्य, गौथ, दण्डी, छन्नी, गर्भिणी इत्यादि द्रव्यसंयोगपदनाम हैं, क्योंकि, धन, गूथ, दण्डा, छत्ता इत्यादि द्रव्यकेसंयोगसे ये नाम व्यवहारमें

नासिपरश्वादयः, तेषामादानपदेऽन्तर्भावात्। सहचरितत्वविवक्षायां भवन्तीति चेन्न, सहचरितत्वविवक्षायां तेषां नामपदनाम्नोऽन्तर्भावात्। क्षेत्रसंयोगपदानि१(से किं तं खेत्तसंजोगे ? भारहे, एरवए, हेमए, एरण्णवए, हरिवासए, रम्मगवासए, देवकुरुए, उत्तरकुरुए, पुव्वविदेहए अपरविदेहए । अहवा मागहे, मालवए, सोरट्ठए, मरहट्ठए, कुंकुणए, से त्तं खेत्तसंजोगे । अनु. १, १३०.), माथुरः वालभः दाक्षिणात्यः औदीच्य इत्यादीनि, यदि नामत्वेनाविवक्षितानि भवन्ति । कालसंयोगपदानि२(से किं तं कालसंजोगे ? सुसमसुसमाए, सुसमाए, सुसमदुसमाए, दुसमसुसमाए, दुसमाए, दुसमदुसमाए, । अहवा पावसए, वासारत्तए, सरदए, हेमंतए, वसंतए, गिम्हए, से त्तं कालसंजोगे । अनु. १, १३१.) यथा- शारदः वासन्तक इत्यादीनि । न वसन्तशरद्धेमन्तादीनि, तेषां नामपदेऽन्तर्भावात् । भावसंयोगपदानि३(से किं तं भावसंजोगे ? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा, पसत्थे अ अपसत्थे अ । से कि तं पसत्थे ? णाणेणं णाणी, दंसणेणं दंसणी, चरित्तेणं चरित्ती से तं पसत्थे ? से किंतं अपसत्थे ? कोहेणं कोही, माणेणं माणी, मायाए मायी, लोहेणं लोही से तं अपसत्थे, से तं भावसंजोगे । से त्तं संजोएणं । अनु. १, १३२.) - क्रोधी मानी मायावी लोभीत्यादीनि ।

आते हैं । असि, परशु इत्यादि द्रव्यसंयोगपदनाम नहीं हैं, क्योंकि, उनका आदानपदमें अन्तर्भाव होता है ।

शंका-- सहचारीपनेकी विवक्षामें असि, परशु आदिका संयोगपदनाममें अन्तर्भाव हो जायगा ?

समाधान-- ऐसा नहीं है, क्योंकि, सहचारीपनेकी विवक्षा होने पर उनका नामपदमें अन्तर्भाव हो जाता हैं ।

माथुर, वालभ, दाक्षिणात्य और औदीच्य इत्यादि क्षेत्रसंयोगपदनाम हैं, क्योंकि, मथुरा आदि क्षेत्रके संयोगसे माथुर आदि संज्ञाएँ व्यवहारमें आती हैं। जब माथुर आदि संज्ञाएँ नामरू पसे विवक्षित न हों तभी उनका क्षेत्रसंयोगपदमें अन्तर्भाव होता है, अन्यथा नहीं ।

शारद, वासन्तक इत्यादि कालसंयोगपदनाम हैं, क्योंकि, शरद् और वसन्त ऋतुके संयोगसे ये संज्ञाएं व्यवहारमें आती हैं। किंतु वसन्त, शरद्, हेमन्त इत्यादि संज्ञाओंका कालसंयोगपदनामोंमें ग्रहण नहीं होता है, क्योंकि, उनका नामपदमें अन्तर्भाव हो जाता है ।

क्रोधी, मानी, मायावी और लोभी इत्यादी नाम भावसंयोगपद हैं, क्योंकि, क्रोध मान, माया और लोभ आदि भावोंकेनिमित्तसे ये नाम व्यवहारमें आते हैं । किंतु जिनमें

किं तं अचित्ते ? अचित्ते छत्तेण छत्ती, दंडेण दंडी, पडेण पडी, घडेण घडी, कडेण कडी से तं अचित्ते । से किं तं मीसए ? मीसए हलेणं हालिए, सगडेणं सागडिए, रहेणं रहिए, नावाए नाविए, से त्तं दव्व-संजोगे ।

अनु. १, १२९.

न शीलसादृश्यनिबन्धनयमसिंहाग्निरावणादिनामानि१(मु. रावणादीनि नामानि ।), तेषां नामपदेऽन्तर्भावात् । न चैतेभ्यो व्यतिरिक्तं नामास्ति, अनुपलम्भात्२(णामं छव्विहं ।। ३ ।। (कसायपाहुडचुण्णिसुत्तं) गोण्णपदे णोगोण्णपदे आदाणपदे पडिवक्खपदे अवचयपदे उवचयपदे चेदि । x x x पाधण्णपदणामाणं कथं तब्भावो ? बलाहकाए च बहुसु वण्णेसु संतेसु धवला बलाहका लोकाओ त्ति जो णामणिद्देसो सो गोण्णपदे णिवददि गुणमुहेण दव्वम्मि पउत्तिदंसणादो । कयंबणिंबादिअणेगेसु रुक्खेसु तत्थ संतेसु जो एगेण रुक्खेण णिंबवणमिदि णिद्देसो सो आदाणपदे णिवददि वणेणात्तरुक्खसंबंधेणेदस्स पउत्तिदंसणादो । दव्वखेत्तकालभावसंजोयपदाणि

रायासिधणुहरसुरलोकणयरभारहयअइरावयसायरवासंतयकोहीमाणी इच्चाईणि णामाणि वि आदाणपदे चेव णिवदंति इदमेदस्स अत्थि एत्थ वा इदमत्थि त्ति विवक्खाए एदेसिं णामाणं पवुत्तिदंसणादो । अवयवपदणामाणि अवचयउवचयपदणामेसु पविसंति, तेहिंतो तस्स भेदाभावादो । सुअणासा कंबुग्गीवा कमलदलणयणा चंदमुही बिंबोट्ठी इच्चाईणि तत्तो बाहिराणि अत्थि त्ति चे णेदाणि णामाणि समासंतभूदइवसद्दत्थसंबंधेण दव्वम्मि पउत्तीदो । अणादियसिद्धंतपदणामेसु जाणि अणादिगुणसंबंधमवेक्खिय पयट्टाणि जीवो णाणी चेयणावंतो त्ति ताणि गोण्णपदे आदाणपदे च णिवदंति । जाणि णोगोण्णपदाणि ताणि णोगोण्णपदणामेसु णिवदंति । पमाणपदणामाणि बि गोण्णपदे चेव णिवदंति समाणस्स दव्वगुणत्तादो अरविंदसंधस्स अरविंदसण्णा णामपदा । सा च अणादियसिद्धंतपदणामेसु पविट्ठा अणादिसरूवेण तस्स तत्थ पउत्तिदंसणादो । अणादियसिद्धंतपदणामाणं धम्मकालागासजीवपुग्गलादीणं छप्पदंतब्भावो पुव्वं परूविदा त्ति णेदाणिं परूविज्जदे । तदो णामं दसविहं चेव होदि त्ति एयंतग्गहो ण वत्तव्वो, किंतु छव्विहं पि होदि त्ति घेत्तव्वं । जयध. अ. पृ. ४-५.) ।

तत्थेदस्स जीवट्ठाणस्स णामं किंपदं ? जीवाणं ट्ठाण-वण्णणादो जीवट्ठाणमिदि गोण्णपदं । मंगलादिसु छसु अहियारेसु वक्खाणिज्जमाणेसु णामं वुत्तमेव । पुणो

स्वभावकी सदृशता कारण है ऐसी यम, सिंह, अग्नि और रावण आदि संज्ञायें भावसंयोगपदरूप नहीं हो सकती है, क्योंकि, उनका नामपदमें अन्तर्भाव होता है । उक्त दश प्रकारके नामोंसे भिन्न और कोई नामपदं नहीं है, क्योंकि, व्यवहारकमें इनकेअतिरिक्त अन्य नाम नहीं पाये जाते हैं ।

विशेषार्थ-- यतिवृषभाचार्यने कषायप्राभृतमें नामके केवल छह भेद बताये हैं । वे ये हैं, गौण्यपद, नोगौण्यपद, आदानपद, प्रतिपक्षपद, अपचयपद और उपचयपद । पूर्वमें जो नामके दश भेद कह आये हैं । उनमेंसे, यहां पर अनादिसिद्धान्तसंबन्धी गुणसापेक्ष नामोंका गौण्यपद और आदानपदमें तथा गुणनिरपेक्ष नामोंका नोगौण्यपदमें अन्तर्भाव किया है । प्राधान्यपदनामोंका गौण्यपद और आदानपदमें अन्तर्भाव किया है । प्रमाणपदनामोंका गौण्यपदमें, नामपदनामोंका नोगौण्यपदमें और संयोगपदनामोंका आदानपदमें अन्तर्भाव किया है । अवयवपदनामोंका उपचितपदनाम और अपचितपदनामोंमें अन्तर्भाव हो ही जाता है ।

शंका-- उन पूर्वोक्त दश प्रकारके नामपदोंमें यह जीवस्थान कौनसा नामपद है ?

समाधान-- जीवोंकेस्थानोंका वर्णन करनेसे ' जीवस्थान ' यह गौण्य नामपद है ।

शंका-- पहले मंगला दक छह अधिकारोंका व्याख्यान करते समय नामपदका

गंथावदारे णामं उच्चदि त्ति ? न, पूर्वोद्दिष्टस्य नाम्नोऽनेन पदान्वेषणात् ।

पमाणं पंचविहं दव्व-खेत्त-काल-भाव-णय-प्पमाण-भेदेहि । तत्थ दव्व-पमाणं संखेज्जमसंखेज्जमणंतयं चेदि । खेत्त-पमाणं एय-पदेसादि । काल-पमाणं समयावलियादि । भाव-पमाणं पंचविहं, आभिणिबोहियणाणं सुदणाणं ओहिणाणं मणपज्जवणाणं केवलणाणं चेदि । णय-प्पमाणं सत्तविहं, णेगम-संगह-ववहारुज्जुसुद-सद्द-समभिरू ढ-एवंभूद-भेदेहि । अहवा णय-प्पमाणमणेयविहं--

जावदिया वयण-वहा तावदिया चेव होंति णय-वादा ।

जावदिया णय-वादा तावदिया चेव होंति पर-समया१(मु. चेव परसमया । गो. क. ८९४, स. त. १, ४७.) ।। ६७ ।। इदि वयणादो ।।

कथं नयानां प्रामाण्यं ? न, प्रमाणकार्याणां नयानामुपचारतः प्रामाण्याविरोधात् । एत्थ इदं जीवट्ठाणं एदेसु पंचसु पमाणेसु कदमं पमाणं ? भावपमाणं । तं पि पंचविहं तत्थ पंचविहेसु भाव-पमाणेसु सुद-भाव-पमाणं । कर्तृनिरू पणया

व्याख्यान कर ही आये हैं, फिर यहां पर ग्रन्थके प्रारम्भमें नामपदका व्याख्यान किसलिये किया गया है ?

समाधान-- ऐसा नहीं, क्योंकि, पूर्वमें कहे गये नामका दशप्रकारके नामपदोंमेंसे किसमें अन्तर्भाव होता है इसका इस कथनकेद्वारा ही अन्वेषण किया है ।

द्रव्यप्रमाण, क्षेत्रप्रमाण, कालप्रमाण, भावप्रमाण और नयप्रमाणके भेदसे प्रमाणके पांच भेद हैं । उनमें संख्यात, असंख्यात और अनंत यह द्रव्यप्रमाण है । एक प्रदेश आदि क्षेत्रप्रमाण है । एक समय, एक आवली आदि कालप्रमाण है । आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञानके भेदसे भावप्रमाण पांच प्रकारका हैं । नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरू ढ़ और एवंभूतनयके भेदसे नयप्रमाण सात प्रकारका है । अथवा नयप्रमाण आगे कहे गये वचनकेअनुसार अनेक प्रकारका समझना चाहिये।

जितने भी वचन-मार्ग है, उतने ही नयवाद, अर्थात् नयकेभेद हैं । और जितने नयवाद हैं, उतने ही परसमय हैं ।। ६७ ।।

शंका-- नयोंमें प्रमाणता कैसे संभव है, अर्थात् उनमें प्रमाणता कैसे ओ सकती है ?

समाधान-- नहीं, क्योंकि, नय प्रमाणके कार्य हैं, इसलिये उपचारसे नयोंमें प्रमाणताके मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता हैं ।

विशेषार्थ-- शंकाकारका अभिप्राय यह है कि जब नय वस्तुके एक अंशमात्रको ग्रहण करता है सर्वांशरू पसे वस्तुको नहीं जानता है तब उसे प्रमाण कैसे माना जाय । इसका समाधान यह है कि प्रमाण द्वारा परिगृहीत वस्तुमें ही नयकी प्रवृत्ति होती हैं, इसलिये प्रमाणका कार्य होनेसे उपचारसे उनमें प्रमाणता आ जाती है ।

एवास्य प्रामाण्यं निरूपितमिति पुनरस्य प्रामाण्यनिरू पणमनर्थकमिति चेन्न, सामान्येन जिनोक्तत्वान्यथानुपपत्तितोऽवगतजीवस्थानप्रामाण्यस्य शिष्यस्य बहुषु भावप्रमाणेष्विदं जीवस्थानं श्रुतभावप्रमाणमिति ज्ञापनार्थत्वात् । अहवा पमाणं छव्विहं नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावप्रमाणभेदात् । तत्थ णाम-पमाणं पमाण-सण्णा । ट्ठवणा-पमाणं दुविहं, सब्भाण-ट्ठवणा-पमाणं असब्भाव-ट्ठवणा-पमाणमिदि । आकृतिमति सभ्दावस्थापना । अनाकृतिमत्यसभ्दावस्थापना । दव्वपमाणं दुविहं आगमदो णोआगमदो य । आगमदो पमाण-पाहुड-जाणओ अणुवजुत्तो, संखेज्जासंखेज्जाणंत-भेद-भिण्ण-सद्दागमो वा । णोआगमो तिविहो, जाणय१(मु. जाणुग ।) -सरीरं भवियं तव्वदिरित्तमिदि । जाणय-सरीरं२(मु.- सरीरं च भवियं ।) भवियं च गयं । तव्वदिरित्त-दव्व-पमाणं तिविहं, संखेज्जमसंखेज्जमणंतमिदि ।

शंका-- उन पांच प्रकारकेप्रमाणोंमेंसे ' जीवस्थान ' यह कौनसा प्रमाण है ?

समाधान-- यह भावप्रमाण हैं ।

मतिज्ञानादिरूपसे भावप्रमाणके भी पांच भेद हैं । इसलिये उन पांच प्रकारके भावप्रमाणोंमेंसे सजीवस्थान शास्त्रको श्रुतभावप्रमाणरूप जानना चाहिये ।

शंका -- पहले कर्ताका निरूपण कर आये है, इसलिये उसके निरूपण कर देनेसे ही इस शास्त्रकी प्रमाणताका निरूपण हो जाता है, अत: फिरसे उसकी प्रमाणताका निरूपण करना निरर्थक है ?

समाधान -- ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्योंकि, यह जीवस्थान शास्त्र प्रमाण है, अन्यथा वह जिनेन्द्रदेवका कहा हुआ नहीं हो सकता था । इस प्रकार सामान्यरूपसे इस जीवस्थान शास्त्रकी प्रमाणताका निश्चय करनेवाले शिष्यको बहुत प्रकारके भाव प्रमाणोंमेंसे यह जीवस्थान शास्त्र श्रुतभावप्रमाणरूप है, इसतरह विशेष ज्ञान करानेके लिये यहां पर इसकी प्रमाणताका निरूपण किया हैं।

अथवा, नामप्रमाण, स्थापनाप्रमाण, द्रव्यप्रमाण, क्षेत्रप्रमाण, कालप्रमाण और भावप्रमाणके भेदसे प्रमाण छह प्रकारका है ।

उनमें 'प्रमाण ' ऐसी संज्ञाको नामप्रमाण कहते हैं । सभ्दावस्थापनाप्रमाण और असभ्दावस्थापनाप्रमाणके भेदसे स्थापनाप्रमाण दो प्रकारका है । तदाकारवाले पदार्थोंमें सभ्दावस्थापना होती है और अतदाकारवाले पदार्थोंमें असभ्दावस्थापना होती है । आगमद्रव्यप्रमाण और नोआगमद्रव्यप्रमाणके भेदसे द्रव्यप्रमाण दो प्रकारका है । प्रमाणविषयक शास्त्रको जाननेवाले परंतु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित जीवको आगमद्रव्यप्रमाण कहते हैं । अथवा, शब्दोंकी अपेक्षा संख्यातभेदरू प वक्ताओंकी अपेक्षा असंख्यातभेदरू प और तद्वाच्य अर्थकी अपेक्षा अनंतभेदरू प ऐसे शब्दरू प आगमको आगमद्रव्यप्रमाण कहते हैं । ज्ञायकशरीर, भावि और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे नोआगमद्रव्यके तीन भेद समझने चाहिये ।

खेत्त-काल-पमाणाणि पुव्वं व वत्तव्वाणि । भाव-पमाणं पंचविहं-मदि-भाव-पमाणं सुद-भाव-पमाणं ओहि-भाव-पमाणं मणपज्जव-भाव-पमाणं केवलभाव-पमाणं चेदि । एत्थेदं जीवट्ठाणं भावदो सुद-भाव-पमाणं । दव्वदो संखेज्जासंखेज्जाणंतसरू व-सद्द-पमाणं ।

वत्तव्वदा तिविहा-ससमयवत्तव्वदा परसमयवत्तव्वदा तदुभयवत्तव्वदा चेदि । जम्हि सत्थम्हि स-समयो चेव वण्णिज्जदि परू विज्जदि पण्णाविज्जदि तं सत्थं ससमयवत्तव्वं, तस्स भावो ससमयवत्तव्वदा । पर-समयो मिच्छत्तं जम्हि पाहुडे अणियोगे वा वण्णिज्जदि परूविज्जदि पण्णाविज्जदि तं पाहुडमणियोगो वा परसमयवत्तव्वं, तस्य भावो परसमयवत्तव्वदा णाम । जत्थ दो

वि परू वेऊण पर-समयो दूसिज्जदि स-समयो थाविज्जदि सा तदुभयवत्तव्वदा णाम भवदि । एत्थ पुण जीवट्ठाणे ससमयवत्तव्वदा, ससमयस्सेव परू वणादो । अत्थाधियारो तिविहो-पमाणं पमेयं तदुभयं चेदि । एत्थ जीवट्ठाणे एक्को चेय अत्थाहियारो, पमेय-परू वणादो ।
उवक्कमो गदो ।

उनमें, ज्ञायकशरीर और भावि नोआगमद्रव्यका वर्णन पहले कर आये हैं । तद्व्यतिरिक्त-नोआगमद्रव्यप्रमाण संख्यातरूप, असंख्यातरूप और अनन्तरूप भेदकी अपेक्षा तीन प्रकारका है । क्षेत्रप्रमाण और कालप्रमाणका वर्णन पहलेके समान ही करना चाहिये । मतिभावप्रमाण, श्रुतभावप्रमाण, अवधिभावप्रमाण, मन:पर्ययभावप्रमाण और केवलभावप्रमाणके भेदसे भावप्रमाण पांच प्रकारका है । इनमेंसे यह ' जीवस्थान ' नामका शास्त्र भावप्रमाणकी अपेक्षा श्रुतभावप्रमाणरूप है, और द्रव्यकी अपेक्षा संख्यात असंख्यात और अनन्तरूप शब्दप्रमाण है ।

वक्तव्यता तीन प्रकारकी है- स्वसमयवक्तव्यता, परसमयवक्तव्यता और तदुभयवक्तव्यता । जिस शास्त्रमें स्वसमयका ही वर्णन किया जाता है, प्ररूपण किया जाता है अथवा विशेषरूपसे ज्ञान कराया जाता है उसे स्वसमयवक्तव्य कहते हैं- और उसके भावको अर्थात् उसमें रहनेवाली विशेषताको स्वसमयवक्तव्यता कहते हैं । परसमय मिथ्यात्वको कहते हैं। उसका जिस प्राभृत या अनुयोगमें वर्णन किया जाता है, प्ररूपण किया जाता है या विशेष ज्ञान कराया जाता है उस प्राभृत या अनुयोगको परसमयवक्तव्य कहते हैं- और उसके भावको अर्थात् उसमें होनेवाली विशेषताको परसमयवक्तव्यता कहते हैं । जहांपर स्वसमय और परसमय इन दोनोंका निरूपण करके परसमयको दोषयुक्त दिखलाया जाता है और स्वसमयकी स्थापना की जाती है उसे तदुभयवक्तव्य कहते हैं और उसके भावको अर्थात् उसमें रहनेवाली विशेषताको तदुभयवक्तव्यता कहते हैं । इनमेंसे इस जीवस्थान शास्त्रमें स्वसमयवक्तव्यता समझनी चाहिये, क्योंकि, इसमें स्वसमयका ही निरूपण किया गया है।

प्रमाण, प्रमेय और तदुभयके भेदसे अर्थाधिकारके तीन भेद हैं । उनमेंसे इस जीवस्थान शास्त्रमें एक प्रमेय-अर्थाधिकारका ही वर्णन है, क्योंकि, इसमें प्रमाणके विषयभूत प्रमेयका ही वर्णन किया गया है । इसतरह उपक्रमनामका प्रकारण समाप्त हुआ ।

णिक्खेवो चउव्विहो णाम-ट्ठवणा-दव्व-भाव-जीवट्ठाण-भेएण । णाम-जीवट्ठाणं जीवट्ठाण-सद्दो । ट्ठवण-जीवट्ठाणं बुद्धीए समारोविय-जीवट्ठाण-दव्वं । दव्व-जीवट्ठाणं दुविहं आगम-णोआगम-भेएण । तत्थ जीवट्ठाण-जाणओ अणुवजुत्तो आगम-दव्व-जीवट्ठाणं । णोआगम-दव्व-जीवट्ठाणं तिविहं जाणयसरीर-भविय-तव्वदिरित्त-णोआगम-दव्व-जीवट्ठाण-भएण । आदिल्ल-दुगं सुगमं । तव्वदिरित्तं जीवट्ठाणाहार-भूदागास-दव्वं । भाव-जीवट्ठाणं दुविहं आगम-णोआगम-भेएण। आगम-भाव-जीवट्ठाणं जीवट्ठाण-जाणओ उवजुत्तो । णोआगम-भाव-जीवट्ठाणं मिच्छाइट्ठियादि-चोद्दस-जीव-समासा । एत्थ णोआगम-भाव-जीवट्ठाणं पयदं । णिक्खेवो गदो ।

नयैर्विना लोकव्यवहारानुपपत्तेर्नया उच्यन्ते । तद्यथा-प्रमाणपरिगृहीतार्थैकदेशे वस्त्वध्यवसायो१(अनिराकृतप्रतिपक्षो वस्त्वंशग्राही ज्ञातुरभिप्रायो नयः । प्र. क. मा. पृ. २०५.) नयः । स द्विविधः, द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्चेति२(द्रव्यं सामान्यमभेदोऽन्वय उत्सर्गोऽर्थो विषयो येषां ते द्रव्यार्थिकाः । पर्यायो विशेषो भेदो व्यतिरेकोऽपवादोऽर्थो विषयो येषां ते पर्यायार्थिकाः । लघीय. पृ. ५१.) । ३(मु. श्चेति । द्रोष्यत्यदु ।) द्रवति द्रोष्यत्यदुद्रुवत्तांस्तान्पर्यायानिति द्रव्यम्४(द्रवति गच्छति तांस्तान् पर्यायान् द्रूयते गम्यते तैस्तैः पर्यायैरिति वा द्रव्यम् । जयध. अ. पृ. २६. निजनिजप्रदेशसमूहैरखण्डवृत्त्या स्वभावविभावपर्यायान् द्रवति द्रोष्यत्यदुद्रुवच्चेति द्रव्यम् । अ. प. ८७.), द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः ।

नामजीवस्थान, स्थापनाजीवस्थान, द्रव्यजीवस्थान और भावजीवस्थानके भेदसे निक्षेप चार प्रकारका है । ' जीवस्थान ' इस प्रकारकी संज्ञाको नामजीवस्थान कहते हैं । जिस द्रव्यमें बुद्धिसे जीवस्थानकी आरोपणा की हो उसे स्थापनाजीवस्थान कहते हैं । आगम और नोआगमके भेदसे द्रव्यजीवस्थान दो प्रकारका है । उनमें, जीवस्थान शास्त्रके जाननेवाले किन्तु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित जीवको आगमद्रव्यजीवस्थान कहते हैं । ज्ञायकशरीर, भावि और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे नोआगमद्रव्यजीवस्थान तीन प्रकारका है । इनमेंसे, आदिके दो अर्थात् ज्ञायकशरीर और भावि सुगम हैं । जीवस्थानोंके अथवा जीवस्थान शास्त्रके आधारभूत आकाशद्रव्यको तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यजीवस्थान कहते हैं । आगम और नोआगमके भेदसे भावजीवस्थान दो प्रकारका है । जीवस्थान शास्त्रके जाननेवाले और वर्तमानमें उसके उपयोगसे युक्त जीवको आगमभावजीवस्थान कहते हैं । और मिथ्यादृष्टि आदि चौदह जीवसमासोंको

नोआगमभावजीवस्थान कहते । इनमेंसे, इस जीवस्थान शास्त्रमें नोआगमभावजीवस्थान निक्षेप प्रकृत है । इस तरह निक्षेपका वर्णन हुआ ।

नयोंके विना लोकव्यवहार नहीं चल सकता हैं, इसलिये यहां पर नयोंका वर्णन करते हैं । उन नयोंका खुलासा इस प्रकार है-प्रमाणके द्वारा ग्रहण की गई वस्तुके एक अंशमें वस्तुका निश्चय करनेवाले ज्ञानको नय कहते हैं। वह नय द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकके भेदसे दो परि भेदमेति गच्छतीति पर्याय:, पर्याय एवार्थ

प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिक:। तत्र द्रव्यार्थिकस्त्रिविध:- नैगम: संग्रहो व्यवहारश्चेति। विधिव्यतिरिक्त-प्रतिषेधानुपलम्भाद्विधिमात्रमेव तत्त्वमित्यध्यवसाय: समस्तस्य ग्रहणातत्संग्रह: । द्रव्यव्यतिरिक्त-प्रतिषेधानुपलम्भाद् द्रव्यमेव तत्त्वमित्यध्यवसाय: वा संग्रह १:। (सद्रूपतानतिक्रान्तस्वस्वभावमिदं जगत् । सत्तारू पतया सर्व संगृहन् संग्रहो मत: ।। स. त. टी. पृ. ३११. स्वजात्यविरोधेनैकत्वमुपंनीय पर्यायानाक्रान्तभेदानविशेषेण समस्तग्रहणात्संग्रह:। स. सि. १,३३. स्वजात्यविरोधेनैकत्वोपनयात्यमस्तग्रहण संग्रह:। त. रा. वा. १,३३. एकत्वेन विशेषाणां ग्रहणं सग्रहो मत:। सजातेरविरोधेने दृष्टेष्टाभ्यां कर्थचन ।। त . श्लो. वा. १,३३,४९.संग्रहनयाक्षिप्तानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं भेदनं व्यवहार:,२ (स . सि. १, ३३. त.रा.वा.१,३३. प्र. क. मा. पृ. २०५ संग्रहेण गृहीतानामर्थानां विधिपूर्वक:। योऽवहारो विभाग: स्याद्वयवहारो नय: स्मृत: ।। त श्लो. वा. १,३३,५८. व्यवहारस्तु तामेव प्रतिवस्तु व्यवस्थिताम्। तथैव द्श्यमानत्वाद व्यवहारयति देहिन: ।। स.त.टी.प्व्यवहारस्तु तामेव प्रतिवस्तु व्यवस्थिताम्। तथैव द्श्यमानत्वाद व्यवहारयति देहिन: ।। स.त.टी.पृ.३११ व्यवहारपरतन्त्रो व्यवहारनय इत्यर्थ:। यदस्ति न तद् द्वयमतिलङय वर्तत इति नैकगमो नैगम:, संग्रहासंग्रस्वरू पद्रव्यार्थिको नैगम ३ अनमिनिवृत्तार्थसडल्पमात्रग्राही नैगम:। स. सि. १,३३, अर्थसडल्पमात्रग्राही नैगंम:। त. रा. वा. १. ३३. तत्र सडल्पमात्रस्य ग्राहको नैगमो नय:। त.श्लो. वा. १,३३. अनिप्पन्नार्थसङ्कल्पमात्रग्राही नैगम:। प्र.क.मा.पृ. २०५. अन्यदेव हि सामान्यभिन्नज्ञानकारणम्। विशेषोऽप्यन्य एवेति मन्येत निगमो नय:।। स.त.टी.पृ. ३११ नैकैर्मानैर्महासत्तासामान्यविशेषज्ञानैर्मिमीते मिनोति वा नैकम:। निगमेषु इति यावत्। एते त्रयोऽपि नया: नित्यवादिन; स्वविषये पर्यायाभावत: सामान्यविशेषकालयोरभावात्।

प्रकाराका है । जो उन उन पर्यायोंका प्राप्त होता है, प्राप्त होगा और प्राप्त हुआ था उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य ही जिसका अर्थ अर्थात् प्रयोजन हो उसे द्रव्यार्थिकनय कहते हैं । परि अर्थात् भेदको जो प्राप्त होता है उसे पर्याय कहते है। वह पर्याय ही जिस नयका प्रयोजन हो उसे पर्यायार्थिकनय कहते हैं।